International Journal of Advanced Research and Development
ISSN: 2455-4030
Impact Factor: RJIF 5.24
www.advancedjournal.com
Volume 3; Issue 1; January 2018; Page No. 779-780

विन्ध्य के सामाजिक जीवन में हिन्दू समाज

डॉ0 बिनीता दुबे
पी–एच.डी. (इतिहास), अवधेश प्रताप सिंह वि.वि., रीवा, मध्य प्रदेश, भारत।

सारांश
भारतीय हिन्दू समाज जातियों के अनेक समूहों और वर्गों में विभक्त हैं जो अपने प्रतिष्ठानुसार पारस्परिक सामाजिक आचार–विचार, रहन–सहन और व्यवहार में भी पृथक हैं। सभी जातियों के अपने भिन्न–भिन्न व्यवहार और लक्षण हैं, जिनमें उनकी अपनी विशेषता, गुणात्मकता और निजत्व का पता चलता हैं। वस्तुतः भारतीय जाति–व्यवस्था सामाजिक संगठन का अत्यन्त सामान्य रूप है जिसके माध्यम से उसका विकास प्रकृतः हुआ है। विन्ध्यप्रदेश में हिन्दू धर्म के अन्तर्गत प्राचीन काल से कई व्यवस्थाएँ चली आ रही थीं जो तत्कालीन समाज में भी दृष्टिगोचर होती है। वर्ण व्यवस्था, आश्रम व्यवस्था तथा संस्कार हिन्दू धर्म के प्रमुख गुण है। वर्ण व्यवस्था के पालन में कमी नहीं आयी, परन्तु आश्रम व्यवस्था तथा संस्कारों के पालन में क्षीणता आ गई। इसका कारण सामान्य जनों का जटिल परम्पराओं के पालन में कठिनाई थी, साथ ही बाह्य जातियों के आगमन ने भी जटिलताओं को दूर करने में सहायता दी।

मूल शब्द : ब्राम्हण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, विन्ध्यप्रदेश, सामाजिक जीवन।

प्रस्तावना
प्राचीनकाल में भारतीय समाज विभिन्न समूहों में था, जिनकी अपनी विशिष्टताएँ थीं। ये विभिन्न समूह ही कालान्तर में जातियों के रूप में विकसित हुए। जातियों के उन्नयन के साथ–साथ अनेक सामाजिक संस्थाओं का भी निर्माण हुआ जो भारतीय जीवन की विधियों को व्यक्त करती है। भारती 'आचार–विचार', रीति–रिवाज, ज्ञान–दर्शन आदि का पता सामाजिक विभाजन से ही लगता है। बाद में बनने वाली अनेकोनेक भारतीय सामाजिक संस्थाएँ जीवन को उद्घाटित करने की मूल प्रेरक तत्व बनी। धीरे–धीरे जीवन के विविध पक्षों से सम्बन्धित सामाजिक संस्थाओं का गठन और विकास प्रारंभ हुआ, जिसने अपने विभिन्न नियमों और निषेधों से समाज को पूर्णता प्रदान की तथा विकास की ओर अग्रसर किया। वस्तुतः मानव जीवन की अभीष्ट की प्राप्ति में उसकी क्रियाशीलता का सर्वाधिक महत्व है, जो उसके आदर्श और व्यवहार को सम्पुष्ट करती है।

भारतीय समाज अपनी इन्हीं विशेषताओं के कारण विश्व के अन्य समाजों से अलग है। अन्य समाजों की तुलना में भारतीय समाज की अपनी अलग विशिष्टताएँ है, जो अपेक्षाकृत बाह्य कानूनों, नीतियों और बन्धनों पर बहुत कम निर्भर करती हैं। सामाजिक व्यवस्था बनाए रखने के लिए तथा एक–दूसरे पर दबाव और अत्याचार को रोकने के लिए भारत में बहुत कम नियम बने। वस्तुतः व्यक्ति के माध्यम से अनेक ऐसी सन्नियम, सदाचरण और प्रथा–परम्परा का सन्निवेश हुआ कि उस समाज का प्रत्येक सदस्य सच्चरित्र और उत्कृष्ट बना। फलतः समाज का विकास व्यवस्थानुसार योजनाबद्ध स्वाभाविक गति से हुआ है और उसका विभाजन भी वैज्ञानिक तथा तर्कसंगत आधार पर किया गया।

विन्ध्य की अधिकतर जनता हिन्दू थी। पूर्व काल से चली आ रही वर्ण व्यवस्था यहाँ के समाज की मुख्य विशेषता थी। जिनमें ब्राम्हणों की स्थिति सर्वोच्च थी।[1] वे ज्योतिष और वेदों के ज्ञाता होते थे तथा जन्म, विवाह, अभिषेक आदि संस्कारों और कृत्यों में 'पुरोहित' का कार्य करते थे। ये वर्ण व्यवस्था पर आधारित धार्मिक कार्यो को सम्पादित करने के अतिरिक्त प्रशासनिक दायित्वों का भी निर्वाह करते थे। क्षत्रिय वर्ग शासक तथा जागीदार वर्गों का था। यह वर्ग शिकार का बहुत शौकीन था।[2] वाणिज्य व्यापार के कार्यो का सम्पादन करने वाले वैश्य कहलाते थे।[3] इनकी आर्थिक स्थिति अच्छी थी। द्विजेनर जातियों के लोग भी द्विजों के अनुसार आचरण करते थे। जिनमें से कुछ लोग यज्ञोपवीत भी धारण करते थे।[4] इन जातियों में अधिकांशतः आदिवासी थे। यह जाति यहाँ की मूल निवासी थी जो प्राचीन काल से ही विन्ध्यांचल के जंगलों में निवास करती चली आ रही थी। इस काल में आदिवासी, कोल, गोंड़, बैगा तथा अन्य निम्न जातियों की संख्या अधिक थी। कोल रीवा, सतना क्षेत्र में अधिक थे, जबकि गोड़ शहडोल क्षेत्र में। बैगा तथा अन्य निम्न जातियाँ पश्चिमी विन्ध्य में अधिक फैले थे।

समाज की संरचना वर्ण धर्म एवं व्यवसाय पर आधारित थी। समाज में सम्मानित ब्राम्हण, हर दृष्टि से सम्पन्न था। उसे जहाँ विशेषाधिकार प्राप्त थे, वहीं राजकीय पद व पवाईयाँ भी प्राप्त थी। वह महाब्राम्हण हो या जोगिनहाई ब्राम्हण भूखे पेट न सोता था। वह अपने आपको समाज का व्यवस्थाकार एवं आधार मानता था। जहाँ गिने चुने क्षत्रिय इलाकेदार थे, उनकी पवाइयाँ थी, वहीं अधिक क्षत्रिय सैन्य एवं प्रशासनिक सेवा के बाद कृषि कर्म पर निर्भर थे। समाज के वाणिज्य एवं व्यवसाय में वैश्य आगे थे। शूद्र सेवा के साथ विविध व्यवसाय एवं कृषि पर जीवित था। इस काल के समाज में कर्म एवं व्यवसाय पर जातियों का विस्तार हो गया था और सारे समाज की संरचना जाति के ताने बाने से की गई थी।

विन्ध्यप्रदेश का सामाजिक स्वरूप यहाँ के स्थापत्य से भी ज्ञात होता हैं, क्योंकि समाज का कला से गहरा सम्बन्ध रहा है। समाज के साथ–साथ कला भी विकसित हुई।

भारत के अन्य क्षेत्रों की भांति विन्ध्यप्रदेश का तत्कालीन समाज चार वर्णों और बहुसंख्यक जातियों में विभाजित था। वर्तमान में भी उसी व्यवस्था का स्वरूप चलायमान है।

1. ब्राम्हण
तत्कालीन समाज में ब्राम्हणों को उच्च स्थान प्राप्त था। समाज में ब्राम्हणों का आदर और सम्मान का मुख्य कारण उनका धर्ममय

आचरण और ज्ञान था। ब्राह्मण रीवा व छतरपुर नरेशों के यहाँ राजपुरोहितों के रूप में पदस्थ थे। तत्कालीन शासक किसी भी राजनैतिक कार्य से पहले उनसे सलाह लिया करते थे। उनके रहने व अन्य सुविधाओं की पूर्ति के लिए महाराज स्वयं व्यवस्थाएँ करवाते थें। कई जागीरदारों ने भी राजपुरोहितों से दीक्षाएँ ली थीं, जिन्होंने अपनी पवाइयों का कुछ हिस्सा उनको दान कर दिया था।

सामान्य जन भी कर्मकाण्डीय ब्राह्मणों से ही घर में धार्मिक क्रियाएँ सम्पन्न करवाते थे। बहुत सारे ब्राह्मण इस काल में अच्छे साहित्यकार भी थे। ब्राह्मणों के एक बड़े वर्ग ने अपना मूल कार्य छोड़कर नौकरी व व्यवसाय भी प्रारंभ कर दिया था। परन्तु यह निश्चित है ब्राह्मणों का स्थान समाज और प्रशासन दोनों में सर्वोच्च था।

2. क्षत्रिय

समाज में ब्राह्मणों के पश्चात् क्षत्रियों का स्थान था। विन्ध्यप्रदेश में कहीं–कहीं क्षत्रिय अपने को श्रेष्ठ मानते थे, परन्तु वे भी ब्राह्मणों का आदर करते थे। विन्ध्यप्रदेश में शासक वर्ग अपने को क्षत्रिय मानते थे। स्वतन्त्रता प्राप्ति तक वे शासक की भांति कार्य करते रहे परन्तु 1952 के बाद उनकी स्थिति में परिवर्तन हो गया और यहाँ भी लोकतान्त्रिक राज्य की स्थापना हुई जमींदारी विनाश के साथ क्षत्रियों की शक्ति में भी ह्रास होने लगा।

विवेच्य काल में अनेक क्षत्रिय राज परिवार एवं बाह्य स्थानों में नौकरी करते हुए पाए जाते हैं उनमें से बहुत अच्छे साहित्यकार के रूप में भी उभरे।

3. वैश्य

यहाँ की सामाजिक संरचना व व्यवस्था को चलाने में वैश्यों का महत्वपूर्ण योगदान था। वैश्य व्यापार वाणिज्य का कार्य करते थे इसलिए नगर में होने वाली अधिकतर गतिविधियों में इनका हस्तक्षेप होता था। विन्ध्य के मन्दिरों के लिए सर्वाधिक दान इन्हीं से प्राप्त होता था। यह वर्ग प्राचीन काल से आज तक अपनी स्थिति को सुदृढ़ बनाएं हुए है। विवेच्य काल में बहुत सारे वैश्यों ने अपने पारम्परिक व्यवसाय का त्याग कर दिया तथा आधुनिकता में अन्य कार्यों को अपनाया जिसमें नौकरी एवं लेखनी सम्मिलित है। इसी समय कायस्थों की स्थिति बहुत प्रबल हुई जो राज–दरबार के महत्वपूर्ण अंग बन गए थे। तत्कालीन समाज उच्चकोटि के साहित्यकारों में कायस्थों का नाम आता है। ये हिसाब–किताब में माहिर थे अतः अंग्रेजों ने भी महत्वपूर्ण प्रशानिक पदों पर इनकी नियुक्तियाँ की। वैश्य वर्ग के अन्तर्गत बहुसंख्यक जातियाँ थी जो सामान्य एवं पिछड़ी जातियों के रूप में मानी जाती थी। वैश्यों के एक वर्ग को सामाजिक सम्मान प्राप्त था, परन्तु एक वर्ग जो पिछड़े रूप में जाने जाते थे उनको हेय दृष्टि से देखा जाता था। ये पिछडी जातियाँ व्यवसायिक कार्य में ही संलग्न थी। कृषक, नाई, तेली, लोहार, बढ़ई, स्वर्णकार, काछी, ताम्रकार आदि कुछ ऐसी जातियाँ थी।

ये जातियाँ पिछड़ी कहलाने के बाद भी आर्थिक रूप से कमजोर नहीं थी। इनमें से कुछ बहुत सम्पन्न थे परन्तु समाज का दृष्टिकोण इनके प्रति अच्छा नहीं था। विवेच्यकाल में इन पिछड़ी जातियों ने एक–दूसरे के व्यवसाय को भी अपनाया।

4. शूद्र

वर्ण व्यवस्था में इनका स्थान सबसे नीचे था। विन्ध्यप्रदेश के गाँवों और नगरों से अलग हटकर इनकी बस्तियाँ स्थापित की गयी थी। ये दास की तरह कार्य करते थे तथा क्षत्रिय तथा ब्राम्हणों के सामने कुछ भी गलती होने पर इनको मारा–पीटा जाता था तथा छुआछूत मानकर इनको दूर रखा जाता था। ये घर में पूजा पाठ करते थे, अर्थात धार्मिक स्वतंत्रता थी। परन्तु ये गाँव या नगर के सार्वजनिक तालाब या कुएँ के पानी का प्रयोग नहीं कर सकते थे। इनसे जागीरदारों के यहाँ बेगारी करवाई जाती थी। विवेच्य काल के अन्त से इनकी स्थिति में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ और वे समाज का हिस्सा बन गए। इस वर्ग में चर्मकार, धोबी, जुलाहा, घसियारे आदि आते थे। इनका बड़ा भाग मजदूरी पर आश्रित था। यह वर्ग अपने मुख्य व्यवसाय को त्यागकर मजदूरी करने लगा था जो खेतों में तथा भवन निर्माण में काम करके अपनी जीविका चलाता था।

निष्कर्ष

समाज परम्परागत वर्ण व्यवस्था पर आधारित था। उसकी संरचना परम्परागत वर्ण एवं विविध जातियों से की गई थी। ब्राम्हण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र में ब्राम्हण सर्वोच्च था। उन्हें बघेल राज्य एवं समाज दोनों स्थान में विशेष स्थान प्राप्त था। कर्नल बार ने ठीक ही लिखा है कि 'रीवा के जनसमुदाय में ब्राम्हण सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारक था। संभवतः भारत में ऐसी कोई देशी रियासत न होगी, जिसमें रीवा की तरह ब्राम्हण इतने उच्च स्थान पर प्रतिष्ठित किए गए हों। वे सबसे बड़े भू–धारक है। समाज में ब्राम्हण सर्वाधिक स्वतंत्र, सम्मानित और प्रभावशाली है। बघेलखण्ड विधान में उसे विशेष सुविधायें प्राप्त थी। उन्हें राज्य की भूमि के विशाल क्षेत्र पर राजस्व मुक्त अनुदान प्राप्त थे। शासन के अनेक उच्च पदों पर उनका कब्जा था। जनता पर कर लगाने का भी उन्हें अधिकार प्राप्त था। हत्या का अपराधी ब्राम्हण प्राण दण्ड से मुक्त था। ब्राम्हणों की स्वतंत्रता, जातीय प्रधानता एवं विशेषाधिकार के कारण उनमें स्वच्छन्दता और कानून विहीनता की प्रवृत्ति पनपने लगी थी। क्षत्रियों की स्थिति दूसरे स्तर पर थी, जिनमें बघेल इलाकेदार, पवाईदार विशेष सम्मानित थे। बार ने लिखा है कि 'राज्य के अन्तर्गत इलाकों और पवाईयों की फहरिस्त को देखने से यह विदित होता है कि इन राजपूत पवाईदारों का समुदाय कितना शक्तिशाली और विशाल था। वैश्य समाज धनाढ्य था, विविध व्यवसाय करता था, पर समाज में तीसरे दर्जे पर था। समाज का चौथा वर्ण शूद्र एवं शूद्रवर्गीय जातियों में बटा था। इस वर्ग की निम्न जातियाँ अन्त्यज भी थीं। इसी वर्ग में अनेक जनजातियाँ भी थी यथा कोल, गोंड़, बैगा, भारिया, माझी, पनिका, बैसवार, भूर्तिया, अगरिया, बसोर, बेमरिहा, खैरवार तथा पतहारी। ये सम्पन्न समाज से परे जंगलों में गिरोह बनाकर रहते थे।

सन्दर्भ

1. वीरभानूदय काव्यः सर्ग 5/67
2. वही, सर्ग 2/42–48, 8/13–14.
3. वही, सर्ग 2/24, 3/10
4. वही, सर्ग 3/15